स्कूल शिक्षण में लिंगभेद: कारण तथा परिणाम

ज्योत्सना लता बेल्लिअप्पा

भारत में 20वीं सदी के अधिकांश दौर में तथा 21वीं सदी में महिलाओं ने काफी बड़ी संख्या में शिक्षण के व्यवसाय में प्रवेश किया। इसके पीछे कई कारण हैं। सरकारी नीति के स्तर पर यह तय किया गया कि स्कूलों में लड़कियों का नामांकन बढ़ाने के लिए हर प्राथमिक स्कूल में आदर्श रूप से कम से कम एक महिला शिक्षक होना चाहिए। इस लक्ष्य को हासिल करने के लिए, अनेक शिक्षक प्रशिक्षण केन्द्र विशेष रूप से महिलाओं के ही लिए स्थापित किए गए और महिला शिक्षकों को दूरदराज के इलाकों में काम करने के लिए प्रोत्साहन राशियाँ भी दी गईं (मांजरेकर, 2013)। सरकारी नीतियों के अतिरिक्त, समाज में व्याप्त धारणाओं और प्रचलनों ने भी शिक्षण में महिलाओं के प्रवेश को आमतौर पर सहयोग दिया है। मध्यम वर्गों में, शिक्षण को महिलाओं के लिए उपयुक्त व्यवसाय के रूप में देखा जाता है, क्योंकि इसे कम परिश्रम माँगने वाला माना जाता है (अनेक अन्य नौकरियों की तुलना में इसके काम के घण्टे कम होते हैं) और इसलिए घर–गृहस्थी तथा बच्चों की देखभाल की जिम्मेदारियों के साथ इसे सुसंगत समझा जाता है। स्कूल शिक्षक के रूप में अपने स्वयं के कार्यकाल के दौरान मुझे अकसर, इसे 'एक महिला के लिए आदर्श नौकरी' बताए जाते हुए, यह व्यवसाय चुनने के लिए सराहना मिली।

समाज के मूल्यों तथा सरकार की नीतियों के परिणामस्वरूप, स्कूलों के शिक्षण में महिलाओं का अनुपात काफी ऊँचा है। डी.आई.एस.ई. (डिस्ट्रिक्ट इनफॉर्मेशन सिस्टम फॉर एजुकेशन–शिक्षा के लिए जिला सूचना व्यवस्था) के 2012–13 के आँकड़े दर्शाते हैं कि भारत के सभी प्राथमिक स्कूल शिक्षकों में से लगभग 50% तथा सभी माध्यमिक स्कूल शिक्षकों में से 40% महिलाएँ हैं (ये आँकड़े नियमित या स्थायी शिक्षकों के हैं, अनुबन्धित शिक्षकों के नहीं)। इसके पहले, 2008–09 के लिए डी. आई.एस.ई. के द्वारा प्रकाशित विश्लेषणात्मक रिपोर्टों में अनुमान लगाया गया था कि शहरी क्षेत्रों के प्राथमिक स्कूल शिक्षकों में 66.15% तथा ग्रामीण क्षेत्रों के प्राथमिक स्कूल शिक्षकों में 37.2% महिलाएँ हैं। यहाँ प्रश्न यह उठता है कि क्या संख्याओं में महिलाओं की इस बहुलता के परिणामस्वरूप इस व्यवसाय में लिंग के सापेक्ष अधिक न्यायपूर्ण स्थिति पाई जाती है? दुर्भाग्य से, हमेशा ऐसी स्थिति नहीं होती।

एक तो, जैसा कि उपरोक्त आँकड़े दर्शाते हैं, महिलाओं की सघनता प्राथमिक स्कूलों के शिक्षण में हैं, जबकि हाईस्कूलों में आमतौर पर बड़ी संख्या में पुरुषों का प्रतिनिधित्व होता है। इसका कारण अकसर यह बताया जाता है कि, महिलाओं में मातृत्व की 'नैसर्गिक' प्रवृत्ति होने के कारण, वे छोटे बच्चों की देखभाल करने और उनका पोषण करने में बेहतर तरीके से समर्थ होती हैं। प्राथमिक स्कूल शिक्षकों के विपरीत, हाई स्कूल शिक्षक विषयों के विशेषज्ञ होते हैं और अकसर उनके पास स्नातकोत्तर उपाधियाँ होती हैं। इसके परिणामस्वरूप, हाईस्कूल शिक्षण आमतौर पर अधिक सम्मानजनक और बेहतर वेतन वाला व्यवसाय होता है। लेकिन छोटे बच्चों को पढ़ाने के लिए आवश्यक विशेष ज्ञान और कौशलों का इस तरह 'नैसर्गीकरण' किया जाना बहुत समस्यापूर्ण है।

बेंगलूरु में 2012 में दी गई एक वार्ता में प्रसिद्ध शिक्षाशास्त्री तथा विद्वान, प्रोफेसर कृष्णकुमार ने तर्क दिया था कि शिक्षक कुछ ऐसे विशेष "सभ्यतामूलक कार्यों" का निष्पादन करते हैं जो समाज की पुनरुत्पत्ति के लिए अति आवश्यक होते हैं। वे बच्चों को उनके ऐंद्रिक अनुभवों को शब्दों में निरूपित करना, अपने आसपास की चीजों पर गौर करना और अन्य लोगों से संवाद करना सिखाते हैं। सभी बच्चे प्राथमिक स्कूलों में ही फलों, सब्जियों तथा जानवरों को नाम देना, आकारों, रंगों तथा रोजमर्रा की चीजों को पहचानना और घर पर हासिल की गई शब्दावली को आगे बढ़ाना सीखते हैं। यहाँ तक कि कुछ बच्चे ऐसी भाषा भी सीख लेते हैं जो उनके घर पर नहीं बोली जाती। इस तरह, प्राथमिक स्कूल शिक्षकों का काम, बच्चों को तीनों 'आर' (पढ़ना, लिखना तथा अंकगणित) सिखाने के अलावा, उन्हें सामाजिक प्राणी बनने में समर्थ बनाना भी होता है।

इतने नाजुक और महत्त्वपूर्ण कार्य के लिए सावधानीपूर्वक नियोजन तथा तैयारी किए जाने की आवश्यकता होती है। प्राथमिक स्कूल के शिक्षकों को ऐसे चार्टों, रेखाचित्रों और त्रि–आयामी प्रतिरूपों को निर्मित करने की जरूरत पड़ती है जो उनके विद्यार्थियों की जिज्ञासा को उकसाएँ और उनके दिमागों को आकर्षित करके संलग्न करें। उन्हें अमूर्त विचारों को, उनके विद्यार्थियों की उम्र और सन्दर्भ के अनुरूप सरल भाषा में सम्प्रेषित करने के लिए उनको स्पष्ट करने वाले सरल उदाहरण सोचने की जरूरत होती है। वे बच्चों की विविध प्रकार की सीखने की जरूरतों को पूरा करने के लिए अपने पढ़ाने वाले पाठों को अलग–अलग बच्चों के लिए व्यक्तिगत बनाने का प्रयास करते हैं। यह कहकर कि ऐसे विशेष कौशल महिलाओं के लिए 'नैसर्गिक' होते हैं, हम न केवल उस प्रशिक्षण का अवमूल्यन करते हैं जो उन्हें उनकी भूमिका को प्रभावशाली ढंग से निभाने में सक्षम बनाता है, बल्कि यह भी संकेत देते हैं कि पुरुषों में ऐसा कर पाने की उपयुक्त क्षमताएँ नहीं होतीं।

प्राथमिक स्कूल शिक्षक की तरह अपने प्रारम्भिक दिनों में मैंने एक असाधारण रूप से प्रतिभाशाली पुरुष सहकर्मी के साथ काम किया जो डेनमार्क से भारत के दौरे पर आए थे। वे एक प्रतिभावान संगीतज्ञ और कवि थे। वे अकसर अपना गिटार कक्षा में ले आते थे। वे भूगोल, विज्ञान तथा इतिहास की अवधारणाओं को पढ़ाने के लिए गीत रचते थे। कक्षा शिक्षक होने के कारण उन्होंने विद्यार्थियों से घनिष्ठ रिश्ते बना लिए थे। वे उनके साथ मिलकर न केवल उनके जन्मदिन, बल्कि अपना जन्मदिन भी गीतों और संगीत के साथ मनाते थे। वे अपने छोटे बच्चे को अपने विद्यार्थियों से मिलाने के लिए ले आते थे। यह कहने की जरूरत नहीं कि बच्चों को उनकी कक्षा में आनन्द आता था और वे अपने शिक्षक को बहुत चाहने लगे। पर अधिक महत्त्वपूर्ण बात यह है कि उन्होंने बच्चों को एक अधिक फिक्र करने वाले, मृदुल प्रकार के ऐसे पुरुषत्व को सराहना सिखाया जो बच्चों की संगति में खिलता और पनपता है। दुर्भाग्य से, उनके जाने के बाद प्राथमिक कक्षाएँ फिर से ज्यादातर महिला शिक्षकों का स्थान बन गईं और पुरुष शिक्षक हाईस्कूल या शारीरिक शिक्षा विभाग तक सीमित हो गए। स्कूल के छिपे हुए पाठ्यक्रम में रूढ़िबद्ध पुरुष और महिला छवियाँ फिर से उभरकर सामने आने लगीं।

जैसा कि मैंने पहले उल्लेख किया, अधिकांश दफ्तरी नौकरियों की तुलना में, पढ़ाने के पेशे में ज्यादा लम्बे अवकाश मिलने और काम के घण्टे कम होने की वजह से, उसे वेतनभोगी कार्य और घरेलू जिम्मेदारियों में तालमेल बिठा सकने के लिए आदर्श माना जाता है। पर यह धारणा उस कार्य को शामिल करने और समझाने में असफल रहती है जो 'सुधार कार्य' (विद्यार्थियों के काम को सुधारना, उसका आकलन करना और उस पर अंक देना) के रूप में शिक्षक घर ले जाते हैं, और जो कक्षा में पढ़ाने की तैयारी के लिए वे घर पर करते हैं। हालाँकि शिक्षक घर तो जल्दी पहुँच जाते हैं, परन्तु उनके काम के घण्टे देर शाम तक चलते रहते हैं जब वे विद्यार्थियों के काम को जाँचने और अंक देने का काम करते हैं। बेंगलूरु के स्कूल शिक्षकों की पेशेवर पहचानों के बारे में चल रही मेरी शोध परियोजना के हिस्से की तरह मैंने जब एक अवकाश प्राप्त शिक्षिका का साक्षात्कार लिया तो उन्होंने दावा किया कि अपनी कक्षा के 77 विद्यार्थियों की कापियाँ जाँचने के लिए वे नियमित रूप से रात के 3 बजे उठ जाती थीं! जाँचने के काम के अलावा, कक्षा के लिए जिस पूर्वतैयारी की मैंने पहले बात की, वह भी अकसर स्कूल के घण्टों के बाद ही होती है।

1970 के दशक में, महिलावादी समाजशास्त्री, ऐन ओकले ने तर्क दिया था कि घर–गृहस्थी का कार्य जो महिलाओं के द्वारा उनके पतियों के दफ्तर और बच्चों के स्कूल चले जाने के बाद किया जाता है, उनकी आँखों से ओझल बना रहता है, और इसलिए उसका परिवार तथा समाज द्वारा अवमूल्यन किया जाता है। इसी प्रकार, शिक्षक आकलन तथा तैयारी का जो कार्य करते हैं उसे विद्यार्थियों, उनके माता–पिताओं तथा स्कूलों के प्रशासकों के द्वारा शायद ही कभी स्वीकार किया और सराहा जाता है; घरेलू काम की तरह यह कार्य भी घर पर किया जाता है, और इसलिए वह 'अदृश्य' बना दिया जाता है। अन्य वेतनभोगी महिलाओं की तरह जो रोजगार का उत्तरदायित्व लेती हैं, महिला शिक्षक भी एक साथ कई काम करने में कुशल हो जाती हैं, और कापियाँ जाँचने तथा अगले दिन के पाठ की पूर्वतैयारी करने के साथ ही साथ वे खाना बनाने, सफाई करने और अपने खुद के बच्चों के गृहकार्य की निगरानी करने और उसमें उनकी सहायता करने के काम भी निपटाती हैं। कुछ साल पहले, मेरी साथियों, एस. इन्दुमती तथा इंदिरा विजयसिंह के द्वारा पुरुष और महिला शिक्षकों के बारे में की गई एक शोध परियोजना में पाया गया कि पुरुष शिक्षक स्कूल के बाद अकसर अपना समय खेलों, मनोरंजन की गतिविधियों और मित्रों के साथ मिलने–जुड़ने में व्यतीत करते हैं, जबकि महिला शिक्षक अपना बाद का समय घर–गृहस्थी के बचे हुए काम

निपटाने में लगाती हैं। इससे यह निष्कर्ष निकालना आसान है कि किसके पास अपने पेशेवर विकास की गतिविधियों के लिए अधिक समय रहता है।

यह मुझे अपने अन्तिम मुद्दे पर ले आता है, कि शिक्षा के क्षेत्र में बहुत कम महिलाएँ नेतृत्व के पदों पर हैं। केवल लड़कियों के लिए बने निजी स्कूलों के अपवादों को छोड़कर, हमें स्कूल के प्राचार्य के रूप में महिलाएँ बहुत कम दिखाई देती हैं। उनकी पारिवारिक जिम्मेदारियों के चलते, महिलाओं को अपने कौशलों को विकसित करने का, या प्रबन्धन के पदों के लिए तैयार होने के लिए अपनी शैक्षिक योग्यताओं को बढ़ाने का समय बहुत ही कम मिलता है। अनेक महिलाएँ अपना कार्यकारी जीवन कक्षा की शिक्षिकाओं के रूप में प्रारम्भ करती हैं और उसी रूप में उसे अन्त करती हैं, केवल उनके विद्यार्थियों के आयु–वर्ग में या उनके द्वारा पढ़ाए जाने वाले विषयों में कुछ परिवर्तन होता है। इसके परिणामस्वरूप, स्कूल भी अन्ततः परिवार और समुदाय के उन्हीं पारम्परिक लिंगभेद–आधारित सत्ता के ढाँचों को प्रतिबिम्बित करने लगते हैं, जिनमें सत्ता ज्यादातर पुरुषों के हाथों में रहती है। यह न केवल कक्षाओं में महिला शिक्षकों के अधिकार को कमजोर बना देता है, बल्कि, पुरुषों के नेतृत्व सम्भालने की और महिलाओं के देखभाल करने की अधीनस्थ भूमिकाएँ निभाने के कारण, पुरुषत्व और नारीत्व की पारम्परिक धारणाओं को मजबूत बनाता है।

यदि शिक्षा का प्राथमिक उद्देश्य सामाजिक परिवर्तन लाना और विद्यार्थियों को संसार के बारे में सहज स्वीकार की जाने वाली मान्यताओं पर प्रश्न उठाने में समर्थ बनाना है, तो स्कूल शिक्षण के विभिन्न क्षेत्रों में पुरुषों और महिलाओं के असन्तुलित प्रतिनिधित्व को चुनौती दिए जाने की जरूरत है। महिलाओं को हाईस्कूल शिक्षण में नियुक्त करने, और प्राथमिक स्कूल शिक्षण को पुरुषों के लिए आकर्षक बनाए जाने के निष्ठापूर्ण प्रयास किए जाना बेहद जरूरी है। पुरुष और महिला, दोनों तरह के शिक्षकों को इसके प्रति संवेदनशील बनाया जाना चाहिए कि वे कक्षाओं में पारम्परिक लिंगभेद–आधारित रूढ़िवादी छवियों को पुष्ट करने से बचें, साथ ही महिलाओं को शिक्षा में नेतृत्व के पदों को सम्भालने के लिए प्रोत्साहित किए जाने की और उन्हें इसके लिए पर्याप्त प्रशिक्षण दिए जाने की जरूरत है। यदि ऐसे कदम गम्भीरतापूर्वक और निरन्तरता के साथ उठाए जाते हैं, तो हम अगले दस या पन्द्रह सालों में न केवल शिक्षण के पेशे में लिंग की दृष्टि से अधिक न्यायपूर्ण बराबरी ला सकेंगे, और स्कूली शिक्षा में लिंगभेद पर आधारित श्रम के विभाजन को चुनौती दे सकेंगे, बल्कि युवा पीढ़ी को शिक्षा में, बच्चों की देखभाल करने में और व्यापक रूप से वयस्क जीवन में पुरुषों तथा महिलाओं की भूमिकाओं का अधिक समावेशी दृष्टिकोण निर्मित करने में समर्थ भी बना सकेंगे।

References

- Belliappa, J and de Souza, S. 'Gender and the Limits of Agency: Exploring the Memories of Anglo-Indian School Teachers in Bangalore' at Orecomm Festival: Memory on Trial, September, 2013, Malmo Sweden
- DISE/ National University of Educational Planning and Administration (2012) Secondary Education in India: Progress towards Universalisation: DISE 2012-13 (Provisional, as on 30th September2012) UDISE, New Delhi
- DISE/National University of Educational Planning and Administration (2013) Primary Education in India: Progress towards UEE Flash Statistics DISE 2013-14 (Provisional, as on 30th September2013) UDISE, New Delhi
- Indumathi. S and Indira Vijaysimha (2011) 'Women in teaching: impossible fiction or fulfilling lives?' CESI Conference, Hyderabad 12-14th November, 2011
- Krishna Kumar, 'What Teachers Do' Ten Talks The Teacher Foundation Bangalore, Novemeber, 2012
- Manjrekar, N. (2013) 'Women School Teachers in New Times: Some Preliminary Reflections' Indian Journal of Gender Studies 20: 335
- Mehta, A.C. (2011) Analytical Report: 2008-09: Elementary Education: Progress towards UEE National University of Educational Planning and Administration http://dise.in/Downloads/Publications/Publications%202008-09/AR%202008-09/Introduction.pdf
- Oakley, A. (1975) The Sociology of Housework Pantheon Books, New York

ज्योत्सना लता बेल्लिअप्पा अज़ीम प्रेमजी विश्वविद्यालय, बेंगलूरु में फैकल्टी की सदस्य हैं। एक स्कूल शिक्षक के रूप में, उन्होंने प्राथमिक स्कूल में सामाजिक अध्ययन तथा भाषा तथा कला विषय पढ़ाए तथा माध्यमिक स्कूल में समाजशास्त्र पढ़ाया। वर्तमान में वे स्कूल शिक्षकों में लिंगभेद और पेशेवर पहचान के बारे में एक शोध परियोजना में कार्यरत हैं। उनसे jyothsna.belliappa@apu.edu.in पर सम्पर्क किया जा सकता है। **अनुवादः** भरत त्रिपाठी